रोहित वेमुला की सांस्थानिक हत्या–1

आखिरी उम्मीद

बहुजन छात्र

एच.एल. दुसाध

आखिरी उम्मीद
बहुजन छात्र

लेखक

एच.एल. दुसाध

बहुजन डाइवर्सिटी मिशन
दिल्ली

प्रथम संस्करण : 26 जुलाई, 2016
परिवर्द्धित संस्करण : 2018

प्रकाशक : **बहुजन डाइवर्सिटी मिशन**
B-1,149/9 किशनगढ़, वसंत कुंज
नई दिल्ली-110070, संपर्क : 011-26125973
E-mail : hl.dusadh@gmail.com

प्रशासनिक कार्यालय :
2/1467, आदिल नगर, कल्याणपुर, लखनऊ-226022
मो. : 9654816191

© **लेखक**

मूल्य : 70.00 रुपये

रचना	:	**आखिरी उम्मीद : बहुजन छात्र**
लेखक	:	एच.एल. दुसाध
आवरण	:	राकेश यादव
शब्दांकन	:	कम्प्यूटेक सिस्टम, शाहदरा, दिल्ली-32
मुद्रक	:	क्विक ऑफसेट, दिल्ली-94

समर्पित

उच्च शिक्षा में पसरे भेदभाव के खिलाफ
अविराम संघर्ष चला रहे दिल्ली के
एकेडेमिक फोरम फॉर सोशल जस्टिस के अध्यक्ष
***डॉ. केदार कुमार मंडल** को*

अपनी बात

वैसे तो दुनिया के अन्यान्य देशों की भांति शिक्षा के क्षेत्र में भारत में भी भेदभाव की समस्या व्याप्त है, किन्तु हैदराबाद विश्वविद्यालय के प्रतिभाशाली बहुजन छात्र रोहित वेमुला की सांस्थानिक हत्या के बाद आधुनिक भारत में पहली बार यह प्रश्न बड़ा आकार लेकर उभरा। इससे उठी विरोध की तरंगे विश्वविद्यालयों के कैंपस और महानगरों को पार कर सात समंदर पार तक पहुंच गयीं, जिसका काफी श्रेय सोशल मीडिया को जाता है। सोशल मीडिया में रोहित वेमुला की शहादत पर आईं 'सवर्णवादी शिक्षकों के वर्चस्व के कारण हमारे विश्वविद्यालय बहुजन स्टूडेंट्स के कत्लगाह बन गए हैं', 'यह आत्महत्या नहीं, लोकतंत्र, सामाजिक न्याय और समानता की हत्या है', 'रोहित वेमुला की सांस्थानिक हत्या की गयी है', 'एकलव्य ये देश शर्मिंदा है, द्रोणाचार्य अभी जिन्दा है' इत्यादि जैसी टिप्पणियों ने छात्रों को आक्रोश से भर दिया और देखते ही देखते देश में 21वीं सदी का पहला बड़ा आन्दोलन खड़ा हो गया।

रोहित वेमुला के समर्थन में उतरे लोगों ने शिक्षालयों को जिस सवर्ण-वर्चस्व से मुक्त कराने की आवाज बुलंद की थी, वह सवर्ण वर्चस्व दरअसल ब्राह्मण-वर्चस्व है। इन्ही की वजह से शैक्षणिक परिसरों में भेदभाव पसरा है, जिसमें सवर्णों की लिस्ट में शामिल क्षत्रिय, कायस्थ और वैश्यों इत्यादि की भूमिका सहयोगी मात्र की है। यह ब्राह्मण ही हैं जिनका शिक्षालयों में पूरी तरह दबदबा है। उनका यह दबदबा न सिर्फ भारत, बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लिए चुनौती है। कारण, दुनिया के किसी भी देश में ऐसे किसी भी सामाजिक समूह का शिक्षा-व्यवस्था पर दबदबा नहीं है, जो अपने सिवाय बाकी सामाजिक समूहों के शिक्षा के विरुद्ध अवरोध खड़ा करना धर्म का कार्य समझते हों। जी हां! विश्व में यह एक मात्र ब्राह्मण समुदाय है जो अध्ययन-अध्यापन पर एकाधिकार रखना अपना दैविक-अधिकार (divine-right) समझता है। हिन्दू धर्म-शास्त्रों द्वारा निर्मित सोच ने इसे एक ऐसे मनोरोगी समुदाय के रूप में तब्दील कर दी है जिसमें अपवाद रूप से कुछेक को छोड़कर प्रायः सभी में ही छोटा-बड़ा द्रोणाचार्य क्रियाशील है। मूलनिवासियों के दुर्भाग्य से भारत के ज्ञात इतिहास में प्रचंड बहुमत से पहली बार एक ऐसी सरकार सत्ता में आई है, जो देश में भीषणतम रूप में व्याप्त मानव जाति की सबसे बड़ी समस्या, आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी की पूरी तरह उपेक्षा कर, उस हिन्दू धर्म-संस्कृति के उत्थान में सर्वशक्ति लगा रही जिसके जठर से भूरि-भूरि द्रोणाचार्यों का उदय होता रहा है। आज मध्य युगीन सोच की चैम्पियन सवर्णवादी सरकार और मॉडर्न द्रोणाचार्यों की युगलबंदी से उच्च शिक्षा में बहुजन छात्रों और गुरुजनों का भविष्य निहायत ही संकटग्रस्त हो गया है।

यही नहीं आजाद भारत में ऐसा पहली बार हो रहा है जब कोई सरकार बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के संविधान की पूरी तरह अनदेखी कर मनु के लॉ को रूपायित करने की दिशा में आगे बढ़ रही है। ऐसा पहली बार हो रहा है, जब कोई सरकार बहुजनों को उच्च शिक्षा से बाहर करने के साथ संस्कृत, ज्योतिष, पौरोहित्य, योग इत्यादि जैसी प्रगतिविरोधी विद्याओं को थोपने का सबल प्रयास करती दिख रही है। बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने सदियों से शक्ति के स्रोतों (आर्थिक-राजनीतिक-शैक्षिक-धार्मिक-सांस्कृतिक) से जबरन दूर धकेल कर अशक्त बनाये गए लोगों को आरक्षण के जरिये सशक्त बनाने का संविधान में प्रावधान किया था। वैसे तो इस प्रावधान को व्यर्थ करने का प्रयास अतीत की सरकारें भी करती रही हैं, किन्तु वर्तमान सरकार इस मामले में सबको बौना करती प्रतीत हो रही है। ऐसा इसलिए कि इस हिंदुत्ववादी सरकार का एकमेव लक्ष्य हिन्दू ईश्वर के उत्तमांग (मुख, बाहु, जंघा) से जन्मे लोगों का शिक्षा सहित शक्ति के समस्त स्रोतों पर एकाधिकार स्थापित करना है। देश को आर्थिक रूप से विदेशियों का गुलाम बनाने का मार्ग प्रशस्त करने वाली 100 प्रतिशत एफडीआई की मंजूरी इसी तबके के हित को ध्यान में रख कर दी गयी है। इन एकाधिक कारणों से बहुजन समाज में सवर्णवादी सत्ता से मुक्ति की अभूतपूर्व छटपटाहट पैदा हो गयी। अगर बहुजन नेता अकर्मण्यता का शिकार नहीं होते, सवर्णवादी सत्ता अंतिम सांसे गिन रही होती। बहरहाल बहुजन नेतृत्व की निष्क्रियता के चलते अब सवर्णवादी सरकार और द्रोणाचार्यों के मंसूबों पर पानी फेरने की सारी जिम्मेवारी बहुजन छात्र और गुरुजनों पर आन पड़ी है।

स्मरण रहे भारत आज जिस दौर से गुजर रहा है, वैसी स्थिति में भारत ही नहीं, पूरी दुनिया में ही छात्र और गुरजनों ने गौरवशाली इतिहास रचा है। जहाँ तक भारत का सवाल है 1942 में 'भारत छोड़ों' आन्दोलन में छात्रों ने जो भूमिका अदा की उसे कौन भूल सकता है। आजाद भारत में 1974-75 में बहुजन नजरिये से देश की हालत आज जैसी बदतर नहीं थी। बावजूद इसके जेपी के सम्पूर्ण क्रांति (असल में सम्पूर्ण-भ्रान्ति) के आह्वान पर छात्रों ने जो रोल अदा किया, उससे स्वाधीन भारत की सबसे शक्तिशाली प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी की सत्ता का पतन हो गया। 74-75 के जेपी आन्दोलन के अल्प अन्तराल के मध्य ही असम के छात्रों ने तो वहाँ की सत्ता पर कब्जा जमाने तक का कारनामा अंजाम दे डाला। बहरहाल अबतक तो छात्रों ने सिर्फ एक प्रदेश की सत्ता पर कब्जा जमाने का कारनामा अंजाम दिया है लेकिन बहुजन छात्र और गुरुजन यदि दक्षिण अफ्रीका के मूलनिवासी हीरो जैकब जुमा की मानसिकता से पुष्ट होकर विशिष्ट आन्दोलन के लिए उपलब्ध निश्चित दशाएँ तथा सामाजिक असंतोष पनपाने के लिए सापेक्षिक वंचना का सद्व्यवहार करें तो वे विश्व इतिहास में सबसे बड़े लोकतान्त्रिक क्रांति को अंजाम दे सकते हैं, यही बतलाने का बलिष्ठ प्रयास इस पुस्तक में हुआ है।

–एच.एल. दुसाध

26 जुलाई, 2016

मो. : 9654816191, E-mail : hl.dusadh@gmail.com

अनुक्रम

शिक्षण संस्थाओं में पसरा भेदभाव : सवर्ण वर्चस्व का परिणाम 9

रोहित वेमुला : 21वीं सदी का एकलव्य 9, शिक्षा के क्षेत्र में सामाजिक और लैंगिक विविधता का असमान प्रतिबिम्बन 9, शिक्षा की अहमियत 10, पश्चिम में शिक्षण संस्थाओं का प्रजातान्त्रीकरण 11, वैदिक मनीषियों की जीत 11, मैकाले की झरना शिक्षा-सिद्धांत 12, शिक्षा पर फुले का सिद्धांत 13, ब्राह्मण-विद्रोह से भयाक्रांत : अंग्रेज 14, 19वीं सदी में भी वैदिक भारत जैसा एकाधिकार 14, मंडल का ऐतिहासिक असर 15, भूमंडलीकरण के दौर की शिक्षा 16, ओबीसी आरक्षण के खिलाफ गृह-युद्ध जैसे हालात 17, 21वीं सदी में भी अटूट है : शिक्षा पर सवर्णों का एकाधिकार 17, आरक्षण को निष्प्रभावी करने की तरकीबें 18, सवर्ण-वर्चस्व की ओर दुनिया का ध्यान आकृष्ट करना जरुरी 18, सवर्ण वर्चस्व : शिक्षा जगत के लिए घातक क्यों! 19, सवर्ण दबदबे का सर्वाधिक शिकार : दलित छात्र 19, शिक्षण संस्थाओं के प्रजातंत्रीकरण की जरूरत 20

शिक्षालयों में जरूरी : एजुकेशन डाइवर्सिटी 21

डीयू के दलित शिक्षकों ने लगाया प्रताड़ना का आरोप 21, डॉ. सुनील कुमार 'सुमन' की पीड़ा 22, ओबीसी वर्ग के छात्र-शिक्षक भी भेदभाव के शिकार 23, भेदभाव के पृष्ठ में धार्मिक और सांस्कृतिक कारकों की अनदेखी 24, भेदभाव के लिए मुख्य रूप से जिम्मेवार ब्राह्मण वर्ग 25, ब्राह्मण वर्ग के खिलाफ : फुले का हुंकार 26, जातिगत भेदभाव के मूल में : हिन्दू धर्म-शास्त्र 27, दैविक अधिकारी वर्ग के एकाधिकार से उच्च शिक्षण संस्थाओं को मुक्त करने के लिए : एजुकेशन डाइवर्सिटी 28, सेपरेट बहुजन यूनिवर्सिटी : शेष विकल्प 30, शिक्षण संस्थाओं से ब्राह्मण वर्ग को खारिज करने का आह्वान 30, वंचित जातियों के लिए : अलग शिक्षालय 31

उच्च शिक्षा में भेदभाव का सामाजिक मनोविज्ञान 32

भेदभाव के मर्मान्तक तरीके 32, भेदभाव का मूल कारण 32, शिक्षा के क्षेत्र में सर्वाधिक भेदभाव : स्कूलों में नहीं, विश्वविद्यालयों में 33, उच्च शिक्षा में सवर्ण वर्चस्व : दरअसल ब्राह्मण वर्चस्व है 33, हिन्दुओं की मनोवृत्ति : दुनिया के अन्य समाजों से भिन्न! 33, पूर्वाग्रह के कारक 34, जातीय पूर्वाग्रह का प्रधान कारक : हिन्दू धर्म-संस्कृति 34, हिन्दुओं के सामाजिक विवेक की समस्या 35, द्रोणाचार्य की भूमिका में अवतरित होने के पीछे : कुछ अन्य कारक 35, ब्राह्मणों के पूर्वाग्रह को रोकने में व्यर्थ : प्रचलित उपाय 35

एक नये ढसाल की जरूरत 37

ईंट का जवाब पत्थर से देने की मानसिकता पैदा किया : दलित पैंथर 37, ब्लैक पैंथर से प्रेरित : दलित पैंथर 37, दलित पैंथर का घोषणापत्र 37, एक चिंगारी

: जो शोला न बन सकी 38, गर्व करने लायक रहीं : दलित पैंथर की उपलब्धियाँ 38, दलित पैंथर आन्दोलन और दलित साहित्य 39, दलित पैंथर की स्थापना के दिनों में : आज से कमतर गैर-बराबरी 39, उथल-पुथल मचाने लायक गैर-बराबरी 40, ढसाल की भूमिका में अवतरित होने की जरुरत 40

सारी उम्मीदें अब बहुजन छात्रों पर 41

रोहित वेमुला का एकाकीपन और बहुजन संगठन 41, समाज का दोहरा चरित्र 42, शिक्षा के महत्व को कमतर आंकते : बहुजन नेता 42, देश और शिक्षा दोनों का भगवाकरण होगा 43, मेडिकल में पढ़ाया जायेगा : गीता और उपनिषद 44, यूजीसी के बहुजन विरोधी ताजे फैसले 44, उत्पीड़न के शिकार : बहुजन छात्र ही नहीं, शिक्षक भी 45, अपने नेतृत्व की अकर्मण्यता के चलते पूरी तरह निराशा में घिर चुका है : बहुजन समाज 45, बहुजन छात्रों पर ऐतिहासिक जिम्मेवारी 46, असम की सत्ता पर काबिज हुए : छात्र नेता 47, छात्र राजनीति का स्वर्णिम अध्याय 47, आन्दोलन की निश्चित दशाएं 48, विशिष्ट आन्दोलनों का सबब : सामाजिक असंतोष 49, ऐसी गैर-बराबरी और कहाँ! 49, विषमता का भयावह परिणाम 50, बाबा साहेब के चेतावनी की हुई अनदेखी 50, प्राथमिक महत्व का प्रश्न : संपदा-संसाधनों और धन का न्यायपूर्ण पुनर्वितरण 51, आन्दोलन की आग में घी : सापेक्षिक वंचना 51, सापेक्षिक वंचना से : अमेरिका में घटित हुई क्रान्ति 52, अमेरिका ने उधार लिया : भारत की आरक्षण प्रणाली 53, भारत में डाइवर्सिटी के जनक : चन्द्रभान प्रसाद 53, भोपाल घोषणा का असर 54, बहुजन डाइवर्सिटी मिशन का उदय 55, अमेरिका की डाइवर्सिटी से पनपने लगी है : सर्वत्र भागीदारी की चाह 56, अमेरिका की एजुकेशन डाइवर्सिटी भी कर सकती है कमाल 57, आकु का डाइवर्सिटी विचार 57, शत्रुता से लबरेज वंचित जातियों में पनप रहा है : हम-भावना 59, क्रान्तिकारी साहित्य का जखीरा : बहुजन साहित्य 59, कांशीराम के उदय के बाद बदला : बहुजन साहित्य का तेवर 60, एक ही कमी : योग्य नेतृत्व का अभाव 61, माओवादी आन्दोलन को फीका पड़ना ही था 61, दक्षिण अफ्रीका बनाम भारत के मूलनिवासी 62, दक्षिण अफ्रीका से प्रेरणा लेने की जरूरत 63

बहुजन छात्र-गुरुजनों के समक्ष बीडीएम की अपील! 65

बीडीएम का घोषित लक्ष्य! 65, बीडीएम का एजेंडा! 65 उपरोक्त लक्ष्यों को हासिल करने के लिए! 66 बीडीएम की गतिविधियां 66, खूब व्यर्थ नहीं गया : बीडीएम का प्रयास 67, ऑक्सफाम की रिपोर्ट से स्तब्ध : बीडीएम 67, 1% लोगों के हाथ में 58% से सीधे 73% दौलत जाने के लिए जिम्मेवारः मोदी की सवर्णपरस्त नीतियां! 68, टॉप की 10% आबादी के कब्जे में 90% दौलत! 68, आर्थिक विषमता का भीषण कुप्रभाव! 69, इतिहास की पुकार : धन-दौलत के न्यायपूर्ण बंटवारे के लिए बहुजन समाज के प्रबुद्धजन आगे आयें! 70, इतिहास में सबसे बड़ी लोकतांत्रिक क्रांति को अंजाम दे सकते हैं : बहुजन छात्र और गुरुजन! 70, हम आपके बीच क्यों आए! 71, हमारे आंदोलन की ताकत! 71

शिक्षण संस्थाओं में पसरा भेदभाव : सवर्ण वर्चस्व का परिणाम

रोहित वेमुला : 21वीं सदी का एकलव्य

हैदराबाद विश्वविद्यालय के निलंबित शोध छात्र रोहित वेमुला की सांस्थानिक हत्या से शुरू हुआ विरोध प्रदर्शन देशव्यापी आन्दोलन का रूप अख्तियार कर चुका है। आन्दोलन के दबाव में खुदकशी करने वाले रोहित के चार साथियों का निलंबन वापस लेने और घटना की जांच के लिए न्यायिक आयोग गठित करने व सभी विश्वविद्यालयों के कुलपतियों को विद्यार्थियों के बीच कोई भेदभाव नहीं करने तथा ऐसी घटनाओं से बचने का आदेश जारी होने के बावजूद विरोध की तरंगें विश्वविद्यालयों के कैंपस और महानगरों को पार कर भारत के छोटे-छोटे कस्बों ही नहीं, सात समंदर पार तक तक फैल गयी हैं, जिसका सर्वाधिक श्रेय सोशल मीडिया को जाता है। सोशल मीडिया में रोहित वेमुला की शहादत पर आई 'सवर्णवादी शिक्षकों के वर्चस्व के कारण हमारे विश्वविद्यालय बहुजन स्टूडेंट्स के कत्लगाह बन गए हैं', 'यह आत्महत्या नहीं, लोकतंत्र, सामाजिक न्याय और समानता की हत्या है', 'रोहित वेमुला की संस्थानिक हत्या की गयी है', 'एकलव्य ये देश शर्मिंदा है, द्रोणाचार्य अभी जिन्दा है' इत्यादि जैसी टिप्पणियों ने वीभत्स-संतोषबोध के शिकार जन्मजात वंचितों को उग्र-असंतोषबोध से भर दिया और देखते ही देखते देश में 21वीं सदी का पहला बड़ा आन्दोलन खड़ा हो गया। इस घटना से यह साबित हो गया है कि मीडिया से प्रायः पूरी तरह बहिष्कृत वंचित समूहों ने अब सोशल मीडिया के जरिये आन्दोलन खड़ा करने की ताकत हासिल कर ली है। बहरहाल रोहित वेमुला की शहादत से विरोध की जो सुनामी उठी है उसका लक्ष्य यही है कि शिक्षण संस्थाओं में व्याप्त भेदभाव खत्म हो ताकि फिर किसी रोहित को खुदकशी के लिये मजबूर न होना पड़े। लेकिन सवाल पैदा होता है शिक्षालयों में सदियों से व्याप्त यह भेदभाव कैसे खत्म हो तो कैसे!

शिक्षा के क्षेत्र में सामाजिक और लैंगिक विविधता का असमान प्रतिबिम्बन

जहां तक शिक्षण जगत में भेदभाव का सवाल है, यह समस्या सार्वदेशिक है। भारत ही नहीं, प्रत्येक देश में ही मानव सभ्यता के विकास के हर दौर में सबको शिक्षार्जन

का समान अवसर नहीं मिला, कुछ न कुछ तबके हमेशा इसके शिकार होते रहे हैं। हम यदि इस समस्या को मानव जाति की सबसे बड़ी समस्या, आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी से जोड़कर देखेंगे तो ही सही निष्कर्ष पर पहुँच कर इसका निराकरण ढूंढ पाएंगे। कारण, यह समस्या मानव जाति की सबसे बड़ी समस्या के साथ ओतप्रोत रूप से जड़ित रही है।

अब यदि आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी के उत्पत्ति के कारणों की खोज करेंगे तो पाएंगे कि जिनके हाथ में सत्ता की बागडोर रही, उन्होंने शक्ति के प्रमुख स्रोतों-आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक-का लोगों के विभिन्न तबकों और उनकी महिलाओं के मध्य असमान बंटवारा कराकर ही सबसे बड़ी समस्या को जन्म दिया। स्मरण रहे सारी दुनिया के समाज सिर्फ अमीर-गरीब की दो श्रेणियों में नहीं, जैसा कि मार्क्सवादी दावा करते हैं, बल्कि जाति/नस्ल, लिंग, भाषा, धर्म, स्वाधीन-पराधीन इत्यादि के आधार पर कई भागों में विभाजित रहे। और जिनके हाथों में सत्ता की बागडोर रही उन्होंने सभी समाजों और उनकी महिलाओं को एक जैसा समझा ही नहीं, लिहाजा वे शक्ति के स्रोतों का उनके मध्य असमान बंटवारा कराकर विषमता की सृष्टि करते रहे। अब यदि परिष्कृत भाषा में यह जानने का प्रयास करें कि किस एक खास उपाय का अवलंबन कर दुनिया के तमाम शासक विषमता की सृष्टि करते रहे तो हम पाएंगे कि तमाम शासक ही शक्ति के स्रोतों में सामाजिक (social) और लैंगिक (gender) विविधता (diversity) का असमान (unequal) प्रतिबिम्बन (reflection) कराकर ही आर्थिक और सामाजिक विषमता को जन्म देते रहे।

शिक्षा की अहमियत

अब जहाँ तक शक्ति के स्रोत के रूप में शिक्षा का सवाल है, यह आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक की भांति शक्ति का स्वतन्त्र स्रोत तो कभी नहीं रही, किन्तु शक्ति के स्रोतों को हस्तगत करने का सबसे प्रभावी कोई माध्यम रहा तो वह शिक्षा ही रही। ऐसे में सुप्राचीन काल से ही दुनिया के तमाम शासक आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक के साथ ही अनिवार्य रूप से शिक्षण संस्थानों में सामाजिक और लैंगिक विविधता का असमान प्रतिबिम्बन कराते रहे ताकि उनकी नापसंद के तबके शिक्षा के समान अवसर का लाभ उठाकर शक्ति-संपन्न न बन जायें। भारत से बाहर इसका बड़ा दृष्टांत सुकरात के बुद्धिमान शिष्य प्लेटो के ग्रन्थ 'द रिपब्लिक' (the republic) में देखने को मिलता है। उन्होंने एथेंस के शासक वर्ग के हित में भारत की वर्ण-व्यवस्था की भांति जिस त्रि-वर्गीय समाज (क) सत्यसंरक्षक अथवा शासक, (ख) शासन सहायक अथवा योद्धा और (ग) शिल्प संचालक अर्थात कृषक एवं मजदूर वर्ग की असफल परिकल्पना की उसमें शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए सबको समान अवसर नहीं थे। प्राचीन गणराज्य के वाहक एथेंस की भांति जब यूरोप का समाज सभ्यता के विभिन्न

काल में पैट्रीशियन, प्लेबियन, योद्धा और दास, किंग, लॉर्ड्स, बैरेन्स, कृषक, सेर्फ इत्यादि में विभाजित रहा, उसमें भी शिक्षा के अवसर सबको समान रूप से सुलभ नहीं रहे, यह इतिहास का अध्ययन कर कोई भी जान सकता है।

इस्लाम के जिस समतावादी दर्शन से दुनिया को आप्लावित करने के लिए मुसलमान विजेता एक हाथ में चमचमाती तलवार और दूसरे हाथ में कुरआन लेकर एक-एक कर देश विजय करते रहे, उन तक ने भी तालीम के क्षेत्र में सामाजिक और लैंगिक विविधता लागू नहीं किया। अगर करते तो 21वीं सदी में किसी मलाला को शिक्षार्जन के लिए गोली खाने की नौबत नहीं आती।

पश्चिम में शिक्षण संस्थाओं का प्रजातान्त्रीकरण

बहरहाल जिस यूरोप ने कालांतर में पूरे विश्व को आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से लैस किया, वहां राजतंत्रीय व्यवस्था के गणतांत्रिक व्यवस्था में तब्दील होने के साथ-साथ स्थिति में आमूल परिवर्तन आया। वहां के कम्युनिस्ट देशों ने जहां शिक्षा के राष्ट्रीकरण के जरिये सबको शिक्षा का समान अवसर देने का उपक्रम चलाया वहीं लोकतंत्र विश्वासी देशों ने शिक्षण संस्थाओं का प्रजातान्त्रिकरण करके अर्थात सभी सामाजिक समूहों और उनकी महिलाओं को शिक्षालयों में उचित प्रतिनिधत्व देकर शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने का बलिष्ठ प्रयास किया। इस मामले में लोकतान्त्रिक रूप से परिपक्व देशों में अमेरिका सबसे आगे निकल गया, जहां के भूरि-भूरि नोबेल विजेता देने वाले शिक्षण संस्थानों के प्रवेश, टीचिंग, प्रबंधन में सामाजिक और लैंगिक विविधता लागू कर वंचित अश्वेतों और महिलाओं को उच्च शिक्षा में अवसर सुलभ कराने का बड़ा उपक्रम चलाया गया। हालांकि तमाम कोशिशों के बावजूद पश्चिम के विकसित देश तक सभी समुदायों और उनकी महिलाओं के मध्य शिक्षा के अवसरों के समान बंटवारे के लक्ष्य को पूरी तरह हासिल नहीं कर पाए हैं बावजूद इसके यह सचाई कि वहां इस क्षेत्र में दृष्टिकटु विषमता नहीं है। बहरहाल आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक शक्ति को अर्जित करने का मार्ग सुगम करने वाली शिक्षा को सभी समुदायों और उनकी महिलाओं के मध्य असमान रूप से बांटने का अपराध दुनिया के तमाम शासकों ने ही किया, किन्तु इस मामले भारत का कोई जवाब ही नहीं है।

वैदिक मनीषियों की जीत

दुनिया के दूसरे शासकों ने अपने नापसंद के किसी समुदाय विशेष को चिरकाल के लिए शिक्षालयों से दूर रखने का जघन्य काम अंजाम नहीं दिया। यह एकमात्र भारत के शासक थे जिन्होंने वर्ण-व्यवस्था के जरिये चिरकाल के लिए दलित, आदिवासी, पिछड़े और महिलाओं से युक्त देश की प्रायः 93 प्रतिशत आबादी को शिक्षालयों से दूर रखने का सफल उपक्रम चलाया। कहने के लिए हिन्दू धर्म की प्राणाधार

वर्ण-व्यवस्था, जीवन का चरम लक्ष्य, मोक्ष सुलभ कराने का विधान मात्र थी। किन्तु सचाई यही है कि जिस तरह प्राचीन एथेंस में शासक जमात के हित में प्लेटो ने 'द रिपब्लिक' के जरिये समाज को तीन भागों में बाँट कर उनका अधिकार और कर्तव्य स्थिर करने के क्रम में शासक जमात का हित साधने का प्रयास किया, उसी तरह वैदिक मनीषियों ने वर्ण-व्यस्था के जरिये चार प्रधान समूहों को मोक्ष का मार्ग सुलभ कराने के क्रम में शक्ति के सारे स्रोत शासक जमात के लोगों (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों) के मध्य आरक्षित कर दिया। एथेंस के मनीषी अपने मकसद में कामयाब न हो सके, किन्तु वैदिक मनीषी वर्ण-व्यवस्था को ईश्वर-सृष्ट प्रचारित करने के कारण अपने लक्ष्य में शत प्रतिशत कामयाब रहे। उन्होंने जहां एक ओर शुद्रातिशूद्रों और महिलाओं के लिए शिक्षार्जन अधर्म घोषित कर, उन्हें इस क्षेत्र से चिरकाल के लिए बहिष्कृत कर दिया वहीं दूसरी ओर एकलव्यों का अंगूठा काट और कर्णो को रणांगन से दूर रखकर अर्जुनों को चैम्पियन बनवाते रहे।

शिक्षालयों से बहिष्कृत : शुद्रातिशूदअब अगर प्राचीन युगीन दुनिया के दूसरे शासकों से भारत के शासकों से तुलना की जाय तो स्पष्ट नजर आएगा कि गैर-भारतीय शासकों ने जहां पूरे समाज के मध्य शिक्षा का असमान बंटवारा कराया, वहीं भारतीय शासकों ने महज ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य पुरुषों, जो सम्पूर्ण आबादी के बमुश्किल 7 प्रतिशत लोग रहे, के मध्य ही असमान बंटवारा कराया। क्योंकि चारों वर्णो की आधी आबादी और शुद्रातिशूद्रों सहित 93 प्रतिशत लोगों को इससे पूरी तरह बहिष्कृत ही रखा। शिक्षा का असमान बंटवारा महज ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य सहित शूद्र संख्यक शासक जमात में कराने के क्रम में ब्राह्मणों ने, जो आबादी में डेढ़ प्रतिशत से ज्यादा कभी नहीं रहे, शिक्षा पर ऐसा एकाधिकार कायम किया जिसकी मिसाल मानव जाति के इतिहास में और कहीं नहीं मिलेगी। बहरहाल वंचित बहुजन समाज और महिलाओं को शिक्षालयों से दूर रखने का जो क्रम वैदिक भारत से शुरू हुआ वह, बौद्ध-भारत को छोड़, मुसलमान भारत को अतिक्रम कर अंग्रेज भारत में तब तक जारी रहा जबतक ईस्ट इंडिया कंपनी सरकार ने 1813 में कानून बना कर शिक्षालयों के द्वार सभी के लिए न खोल दिए। इस दरम्यान भारत के शिक्षालय सामाजिक और लैंगिक विविधता के लिए बुरी तरह तरसते रहे।

मैकाले की झरना शिक्षा-सिद्धांत

अंग्रेजों ने तो शिक्षालयों के द्वार सभी जाति-धर्म के लड़के-लड़कियों के खोल दिए, किन्तु शुद्रातिशूद्रों और महिलाओं का प्रवेश-निषेध प्रायः पूर्ववत ही रहा। यहां तक कि दलित जिस थॉमस बैबिंग्टन मैकाले को एक मसीहा के रूप में याद करते हैं, वे तक इसमें आवश्यक सुधार करने में व्यर्थ रहे। स्मरण रहे ब्रिटिश भारत के पहले कानून मंत्री और सरकारी शिक्षा समिति के अध्यक्ष मैकाले ने भारतीय शिक्षा सम्बन्धी

समस्यायों का अध्ययन कर 7 फरवरी, 1835 को अपना सुपर्सिद्ध ऐतिहासिक 'विवरण-पत्र' गवर्नर जनरल की काउन्सिल के सामने रखा जिसे लार्ड विलियम बेंटिक ने मंजूर कर लिया। इसी के आधार पर बेंटिक ने 7 मार्च, 1853 को शासन-शिक्षा सम्बन्धी नीति की घोषणा की। अपने ऐतिहासिक विवरण में मैकाले ने भारतीय शिक्षा पद्धति और भारतीय साहित्य का मखौल उड़ाते हुए सदम्भ कहा था, 'भारत तथा अरब के सम्पूर्ण साहित्य का मूल्य एक अच्छे यूरोपियन ग्रंथालय की पुस्तक की एक आलमारी जितना है। पश्चिम की शिक्षा अंग्रेजों में देने का घोषणापत्र तय किया गया था। इसी प्रकार यूरोपियन साहित्य तथा विज्ञान का भारतवासियों में प्रचार करने निर्णय लिया गया।'

मैकाले विरोधी उनकी शिक्षानीति में जिस बात को बार-बार याद दिलाते हैं, वह यह था कि, 'हमें भारत को एक ऐसा वर्ग बनाना चाहिए, जो कि खून तथा वर्ण से भारतीय हो, लेकिन विचार, नैतिक आदर्श तथा बुद्धि से वह अंग्रेज होगा।' किन्तु वे भूलकर भी उनके 'शिक्षा के झरना सिद्धांत' का जिक्र नहीं करते। मैकाले ने शिक्षा के झरने का सिद्धांत (downward filteration theory of education) प्रतिपादित करते हुए कहा था, 'शिक्षा ऊपर के वर्ग से झरकर सामान्य जनता तक जाएगी। जिस प्रकार भारत में हिमालय का पानी ऊपर से नीचे की ओर प्यासे खेतों को गीला करता है। उसी प्रकार जीवन के लिए उपयुक्त जानकारी बूँद-बूंद टपकते हुए नीचले वर्ग की और जाएगी। (education was to permeate the masses from above drop by drop from the Himalaya of india life useful information was to trickle downwards, farming in the time abroad and statly stream to irrigate thirsty plain-mecauley) मैकाले की उसी शिक्षा नीति के फलस्वरूप हमारे शिक्षालय बहुजन छात्रों के लिए कत्लगाह बन गए। शिक्षा की उसी ट्रिकल डाउन थ्योरी के कारण भारत के प्राइमरी से लेकर उच्च शिक्षण संस्थाओं में लगभग वैदिक भारत की तरह ही आधुनिक भारत में भी ब्राह्मणों का वर्चस्व स्थापित हो गया। सुनने में आ रहा है कि आगामी कुछ सप्ताहों में टीएसआर सुब्रह्मनियम की अध्यक्षता में जो नई शिक्षा नीति आ रही है, उसमें मैकाले की झरना पद्धति की काट प्रस्तुत की गयी है।

शिक्षा पर फुले का सिद्धांत

बहरहाल मैकाले की उस झरना-शिक्षा पद्धति की हिमायत राजा राममोहन राय जैसे तमाम सवर्ण समाज सुधारकों ने की ही थी, परवर्तीकाल में गांधी ने भी समर्थन किया। यह एकमात्र युगद्रष्टा जोतीराव फुले थे जिन्होंने मैकाले की ऊपर से नीचे के विपरीत शिक्षा को नीचे से ऊपर ले जाने की न सिर्फ परिकल्पना प्रस्तुत किया, बल्कि शुद्रातिशूद्रों और महिलाओं के लिए स्कूल खोल कर उसका व्यवहारिक मार्गदर्शन

भी किया। इस मामले में सन् 1882 में विलियम हंटर के समक्ष रखा गया उनका प्रतिवेदन भारतीय शिक्षा जगत की क्रन्तिकारी घटना है। अगर वह मान लिया जाता तब वंचित जातियों के छात्रों को शर्तिया तौर पर शिक्षालयों के उस घुटन भरे वातावरण से निजात मिलती, जिसे न झेल पाने के कारण जहां कोई रोहित आत्महत्या कर लेता है तो कोई शिक्षालयों का ही परित्याग कर देता है। ऐसा नहीं कि मैकाले के भाइयों को रोहितों की आज की स्थिति का इल्म नहीं था! था, पर वे ब्राह्मणों से डरे हुए थे। क्योंकि उन्होंने वह भयावह मंजर देख लिया था कि जब शिक्षा निषिद्ध जातियों, विशेषकर यदि कोई दलित शिक्षालयों में प्रवेश लेता तो ब्राह्मणों के नेतृत्व में सवर्ण-हिन्दू सिर्फ उसके गाँव ही नहीं, बल्कि आसपास की तमाम दलित बस्तियों को जला कर खाक कर देते। इसे देखते हुए शिक्षा की झरना पद्धति के समर्थन में कुछ अंग्रेज अधिकारियों की राय आंखे खोलने वाली है।

ब्राह्मण-विद्रोह से भयाक्रांत : अंग्रेज

इस मत का समर्थन करते हुए मुंबई के पूर्वराज्यपाल माउन्ट स्टुअर्ट एलफिंस्टन ने कहा था-'मिशनरियों के अनुसार निम्न वर्ग के बच्चे उत्कृष्ट विद्यार्थी होते हैं। लेकिन ऐसे विद्यार्थियों को हमने विशेष उत्तेजना देने के विषय में सावधानी बरतनी चाहिए। क्योंकि समाज में उनसे घृणा और द्वेष किया जाता है, केवल इतना ही नहीं समाज में कई गुट हैं, उनमें से ही यह एक बड़ा गुट है। यदि हमारी शिक्षा पद्धति में उनको प्रथम स्थान दे दिया गया तो शिक्षा का प्रसार नहीं हो पायेगा।' 'बोर्ड ऑफ कंट्रोल' के अध्यक्ष लार्ड एलेनबरो का कहना था, 'यदि शिक्षा और संस्कृति का प्रसार निम्न वर्ग में किया गया, तो उच्च जाति के लोग क्रान्ति कर देंगे और उससे अंग्रेजों की ही बलि चढ़ाई जाएगी।' सिर्फ माउन्ट स्टुअर्ट या लार्ड एलेनबरो ही नहीं, ढेरों अंग्रेज अधिकारी थे जो शिक्षा को नीचे से ऊपर ले जाने के पक्षधर थे, पर बहुजन शिक्षा-विरोधी ब्राह्मणों के विद्रोह के भय से वैसा न कर सके।

19वीं सदी में भी वैदिक भारत जैसा एकाधिकार

हालांकि शिक्षा पर ब्राह्मणों का एकाधिकार कमजोर करने के लिए 19 जुलाई, 1854 को ईस्ट इंडिया कंपनी के संचालकों ने चार्ल्स वुड्स की शिक्षा योजना भारत सरकार को मार्गदर्शन के लिए भिजवाया। लेकिन शासन में उच्च जाति के अधिकारी निम्न जाति के शिक्षा के घोरतम विरोधी थे जिस कारण निम्न जातियों में शिक्षा का प्रसार घटित करने का वुड्स की योजना सफल न हो सकी। फलस्वरूप 19 वीं सदी तक शिक्षा में ब्राह्मणों का एकाधिकार प्रायः वैदिक भारत जैसा रहा। यह एकाधिकार अंग्रेज भारत में ही 20वीं सदी से आरक्षण के जरिये टूटना शुरू हुआ, जिसकी शुरुआत महाराष्ट्र के कोल्हापुर रियासत से हुई।

कोल्हापुर रियासत में राज्यादेश से 1902 में शुद्रातिशुद्रों व अन्य अब्राह्मण बच्चों के लिए शिक्षा के क्षेत्र में आरक्षण दिया गया। उसके बाद 1921 में मिल्लर कमेटी की रिपोर्ट के आधार पर मैसूर राज्य में दलित, पिछड़ों व अन्य गैर-ब्राह्मण जातियों के लिए आरक्षण दिया गया।

इसके बाद सन् 1921 में ही मद्रास प्रेसिडेंसी में दलितों, पिछड़ों एवं गैर-ब्राह्मणों जातियों के लिए शिक्षा में आरक्षण दिया गया। बम्बई प्रेसिडेंसी में स्टार्ट कमेटी की सिफारिशों के आधार पर पिछड़ी जातियों के कुछ घुमंतु जातियों तथा दलितों के लिए एवं ट्रावनकोर में पिछड़े वर्गों, दलितों के लिए सन् 1935 में शिक्षा में आरक्षण लागू किया गया। सन् 1932 में हुए पूना समझौते ने दलित, आदिवासियों के लिए नौकरी और शिक्षा में आरक्षण का मार्ग प्रशस्त कर दिया जिसके फलस्वरूप संविधान में स्थाई प्रावधान बना। लेकिन इससे भी विशेषाधिकारयुक्त सवर्णों के शिक्षा पर एकाधिकार पर कोई फर्क नहीं पड़ा। उनका एकाधिकार 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में ही टूट जाता यदि सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए 29 जनवरी, 1953 को काका कालेलकर की अध्यक्षता में गठित उस पिछड़ा वर्ग आयोग की सिफारिशें समय पर लागू हो गयी होतीं, जिसने 30 मार्च, 1955 भारत सरकार को सौंपी अपनी रिपोर्ट में पिछड़े वर्गों के छात्रों के लिए तकनीकी तथा व्यवसायिक पाठ्यक्रमों में 70 प्रतिशत आरक्षण देने की संस्तुति की थी। बहरहाल 20वीं सदी तक शक्ति के समस्त स्रोतों सहित शिक्षा पर सवर्णों का एकाधिकार अटूट रहने के बावजूद अंततः इसी सदी के शेष दशक में उसके टूटने की जमीन तैयार हुई, जब 7 अगस्त, 1990 को वीपी सिंह ने मंडल आयोग की सिफारिशें लागू की।

मंडल का ऐतिहासिक असर

24 सितम्बर, 1932 के पूना-पैक्ट के बाद 7 अगस्त, 1990 को मंडल आयोग की रपट प्रकाशित होना एक युगांतरकारी घटना थी। मंडल आयोग ने पिछड़ों के लिए सरकारी नौकरियों में आरक्षण के साथ शिक्षा में भी आरक्षण की सिफारिश की थी। इस रिपोर्ट से राजनीति, आर्थिक और शिक्षा के क्षेत्र में अपना वर्चस्व टूटते देख सवर्ण छात्र जहां आत्मदाह और राष्ट्र की संपदा-दाह में जुट गए, वहीं सवर्ण-हितों के चैम्पियन संघ परिवार ने रामजन्म भूमि मुक्ति के नाम पर स्वाधीनोत्तर भारत का सबसे बड़ा आन्दोलन छेड़ दिया। इस आन्दोलन के फलस्वरूप जहाँ हजारों करोड़ की संपदा और असंख्य लोगों की प्राण हानि हुई, वहीं देश का सामाजिक ताना-बाना हमेशा के लिए छिन्न-भिन्न हो गया। राम जन्मभूमि की आग आज भी बुझी नहीं है। बहरहाल पिछड़ों की मुक्ति का फरमान जारी होने के बाद जहां आज के मोदी-स्मृति की भाजपा ने रामजन्म भूमि मुक्ति का आन्दोलन छेड़ा, वहीं कांग्रेस के ब्राह्मण प्रधानमंत्री नरसिंह

राव ने 24 जुलाई, 1991 को भूमंडलीकरण के दौर की एक ऐसी अर्थनीति को अंगीकार किया जो मैकाले की झरना शिक्षा पद्धति से प्रेरित थी।

भूमंडलीकरण के दौर की शिक्षा

नरसिंह राव की झरने वाली वाली (ट्रिकल डाउन) अर्थनीति के दो लक्ष्य थे। पहला आरक्षण को कागजों तक सिमटाना और दूसरा विशेषाधिकारयुक्त सुविधाभोगी वर्ग के आर्थिक-शैक्षणिक वर्चस्व को अटूट रखना। राव अपने मकसद में काफी हद तक कामयाब रहे, इस बात का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि नयी अर्थनीति के बाद निजी क्षेत्र में सृजित 85 प्रतिशत नौकरियां सवर्णों के हिस्से में आईं, जबकि शेष, वह भी निम्न कोटि की, 85 प्रतिशत वंचित बहुजनों के खाते में गयीं। राव ने आरक्षण को कागजों तक सिमटाये रखने की परिकल्पना के तहत निजीकरण, उदारीकरण को जो बढ़ावा दिया, उससे शिक्षा का क्षेत्र भी अछूता नहीं रहा। इस दौर में शिक्षा का घोरतम रूप से व्यवसायीकरण हुआ तथा कारपोरेट घरानों और नेताओं को महंगे-महंगे स्कूल/कालेजों की शृंखला खड़ा करने का अवसर मिल गया। इनमें शिक्षा अत्यंत महंगी होने के कारण, इन शिक्षण-संस्थानों से बहुजन स्वतः बहिष्कृत होते गए। नयी अर्थनीति के दौर में शिक्षा से बहुजनों को वंचित करने के लिए जहां निजी स्कूल/कालेजों को बढ़ावा दिया गया, वहीं सुनियोजित तरीके से सरकारी शिक्षण संस्थाओं को बदहाल बनाया गया। इसके लिए प्राइमरी स्कूलों में बच्चों के लिए मुफ्त का भोजन मुहैया कराने का 15 अगस्त, 1995 को लिया गया राव का निर्णय बहुत ही मारक साबित हुआ। उनकी इस योजना से जहां वंचित बहुजन समाज के बच्चे सरकारी स्कूलों की ओर तेजी से रुख किये, वहीं सुविधा संपन्न अग्रसर तबका अपने बच्चों को प्राइवेट स्कूलों में भेजने लगा। देखते ही देखते प्राइवेट स्कूल प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गए। इससे वंचित समाज के थोड़े अग्रसर लोग भी प्रतिष्ठा का भागीदार बनने का प्रयास करने लगे। अब तो विदेशी विश्वविद्यालय भी खुलने की खबरें आ रही हैं।

बहरहाल जब नरसिंह राव की उदारीकरण और निजीकरण की नीति के चलते सार्वजनिक उपक्रम और शिक्षा संस्थान तेजी से बदहाली की ओर बढ़ने लगे, बहुजनों में बढ़ती जाति चेतना के दबाव में मनमोहन सरकार ने 8 अप्रैल, 2006 को ओबीसी छात्रों के लिए उच्च शिक्षण संस्थाओं के प्रवेश में 27 प्रतिशत आरक्षण देने का निर्णय ले लिया। सरकार के उस निर्णय से एक झटके में केन्द्रीय विश्वविद्यालयों, आईआईटी, आईआईएम और एम्स जैसे शिक्षण संस्थानों में वंचित जातियों के छात्रों की हिस्सेदारी 49.5 तक पहुँच गयी। इस स्थिति को सवर्ण समाज सहजता से न झेल सका और उसके बाद सवर्ण छात्रों ने जो कुछ किया उससे मानवता और लोकतंत्र का एक विराट काला अध्याय रचित हो गया।

ओबीसी आरक्षण के खिलाफ गृह-युद्ध जैसे हालात

केन्द्रीय विश्वविद्यालयों और हाई प्रोफाइल शैक्षणिक संस्थाओं में पिछड़ों के आरक्षण का निर्णय आते ही सवर्णों की संताने शहीदी तेवर के साथ सड़कों पर उतर आईं। उन्होंने अपने कपड़ों पर, 'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है...' जैसे शहीदी नारे लिखकर और हाथों में शुद्रातिशूद्रों के आरक्षण के विरुद्ध कुत्सित टिप्पणियों से भरी तख्तियां लेकर लगभग गृह-युद्ध की स्थिति पैदा कर दिया। आईआईटी और एम्स के झुण्ड के झुण्ड सवर्ण छात्र सड़कों पर झाड़ू लगा और बूट पॉलिश कर बेशर्मी से यह संकेत दिए थे कि यदि आरक्षण पर यह प्रस्ताव वापस न लिया गया तो देश की प्रतिभाएं कल यही करने के लिए बाध्य होंगी। उनके पीछे उनके अभिभावक, साधु-संत, मीडिया-बुद्धिजीवी, जज-वकील, उद्योगपति-व्यापारी, अधिकारी और नेता सभी लामबंद हो गए थे। पिछड़ों के आरक्षण के खिलाफ जो जंग चल रही थी, उसकी कामयाबी के लिए जगह-जगह पूजा-पाठ का आयोजन हुआ था। सबसे आश्चर्यजनक बात तो यह थी कि बार-बाला के रूप में काम करनेवाली सवर्ण युवतियों ने अपनी कमाई से आरक्षण विरोधी आन्दोलन को धन मुहैया कराने का एलान कर दिया था जो शुद्रातिशूद्रों की शिक्षा के प्रति सवर्णों के विरोध का निकृष्टतम दृष्टांत था।

21वीं सदी में भी अटूट है : शिक्षा पर सवर्णों का एकाधिकार

बहरहाल 2006 में वंचित छात्रों की हिस्सेदारी 49.5 प्रतिशत तक पहुचने के बाद सवर्णों का शिक्षा पर एकाधिकार अब तक टूट गया होता, यदि छात्रों का प्रतिशत शिक्षकों में तब्दील हुआ होता। लेकिन वैसा नहीं हुआ। इन पंक्तियों के लिखने के दौरान इस लेखक ने फेसबुक पर आरटीआई प्राप्त की गयी एक सूचना देखा। सूचना के मुताबिक भारत के बेहद प्रतिष्ठित व प्रगतिशील माने जाने वाले जेएनयू में शिक्षकों के 612 पद हैं। 1993 से पिछड़ों के लिए लागू 27 प्रतिशत आरक्षण के हिसाब से वहां ओबीसी के 147 शिक्षक होने चाहिए थे, पर हैं मात्र 29, वह भी असिस्टेंट प्रोफेसर के रूप में। प्रोफेसर तो दूर ओबीसी का वहां कोई एसोसियेट प्रोफेसर तक भी नहीं। जब जेएनयू जैसे प्रगतिशील शिक्षण संस्थान में तुलनामूलक रूप से थोड़ा ताकतवर पिछड़ों की यह स्थिति है तो जेएनयू समेत देश के बाकी विश्वविद्यालयों में वंचित समूहों के शिक्षकों की उपस्थिति कितनी होगी , इसका सहज अनुमान कोई भी लगा सकता है। मतलब साफ है तमाम विश्वविद्यालयों और हाई प्रोफाइल शिक्षण संस्थानों में उन जातियों के शिक्षक अंत्यंत अल्पसंख्या में हैं, जिन्हें जन्मगत कारणों से सदियों से शिक्षालयों से दूर-दूर रखा गया। और इसका प्रधान कारण यही है कि यहाँ लागू आरक्षण को सुनियोजित तरीके से निष्प्रभावी बनाया गया है। इसके पीछे छिपे षड्यंत्र को समझने के लिए थोड़ा अतीत में जाना पड़ेगा।

आरक्षण को निष्प्रभावी करने की तरकीबें

वर्ष 1932 में जब बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने पूना-पैक्ट के तहत एससी/एसटी के लिए शिक्षा, सरकारी नौकरियों, संसद और विधान सभाओं में आरक्षण सुनिश्चित करवाया, गांधीवादी, राष्ट्रवादी, मार्क्सवादी कोई भी दल सहजता से न ले सका। सवर्ण समाज में तो पुत्रशोक की स्थिति व्याप्त हो गयी। वंचितों के आरक्षण के प्रति यह विद्वेष ही मंडल की रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद विस्फोटक रूप लिया। बहरहाल बहुजन आरक्षण के प्रति नफरत के कारण सवर्ण समाज पूना-पैक्ट के जमाने से इसे निष्प्रभावी बनाने में जुट गया। काबिले गौर है कि ब्राह्मण-सवर्णों की एक मातमी सभा में उन दिनों ब्राह्मण राज गोपालाचारी ने सवर्णों को ढाढ़स बढ़ाते हुए कहा था—'हमने अनुसूचित जाति और जनजातियों को दबाव में आरक्षण देने का कानून बनाया है। समय पर आरक्षण देना, नहीं देना तो हमारे ही मर्जी पर है। आरक्षण नहीं देने पर किसी तरह का दंड-जुर्माना देने का कानून हमने न बनाया है, बनवायेंगे।' राजा गोपालाचारी ने तब अपने समाज को साफ संकेत दे दिया था कि आरक्षण का उल्लंघन येन-केन प्रकारेण करते रहना है। आजाद भारत में अब तक केंद्र और राज्यों में शासन-प्रशासन पर काबिज सवर्णों ने संभवतः राज गोपालाचारी के ही संकेतों का अनुसरण करते हुए मुख्यतः (1) पदों के उम्मीदवार उपलब्ध नहीं हैं, (2) पदों के लिए योग्य उम्मीदवार उपलब्ध नहीं हैं और (3) आरक्षित पदों के लिए योग्य उम्मीदवार हैं, मगर स्वीकार योग्य नहीं हैं, यानी दक्ष नहीं हैं जैसे उपायों से तमाम क्षेत्रों में आरक्षण को निष्प्रभावी करने का सफल प्रयास किया है।

सवर्ण-वर्चस्व की ओर दुनिया का ध्यान आकृष्ट करना जरुरी

आरक्षण को अप्रभावी बनाने के सवर्णों के षड्यंत्र से देश के शिक्षण-संस्थान, जिनमें केन्द्रीय विश्वविद्यालयों से लेकर हाई प्रोफाइल आईआईटी, आइआइएम, एम्स जैसे संस्थान भी शामिल हैं, मुक्त नहीं रहे। अतः येन-केन प्रकारेण बहुजन छात्रों का संख्यानुपात शिक्षकों में तब्दील न होने के परिणामस्वरूप उच्च शिक्षण संस्थानों में दबदबा पूर्ववत रहा। इस दबदबे का अनुमान जेएनयू के प्रोफेसर विवेक कुमार की फेसबुक पर छपी एक ताजी पोस्ट से लगाया जा सकता है। प्रोफेसर विवेक कुमार ने लिखा है, 'देश के 47 केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में अनुसूचित जाति का कोई वी. सी. नहीं, सिर्फ अनुसूचित जनजाति से एक वीसी हैं। मध्य प्रदेश की 17 स्टेट यूनिवर्सिटियों में एससी का एक जबकि उत्तर प्रदेश की 25 स्टेट यूनिवर्सिटियों में एक भी एससी का वीसी नहीं है।' जब केन्द्रीय और राज्य विश्वविद्यालयों में एससी/एसटी के इतने कम संख्यक कुलपति हैं तो ओबीसी के भी नाममात्र के ही वीसी होंगे, ऐसा अनुमान लगाना गलत नहीं होगा। वीसी की तरह प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष

और प्रशासनिक अधिकारी के रूप में उन्हीं का वर्चस्व है, इसे जानने के लिए किसी विशेष अध्ययन की जरूरत नहीं है।

भारत की शिक्षण संस्थाओं में व्याप्त भेदभाव को लेकर भूरि-भूरि अध्ययन हुए, पर किसी में भी शिक्षालयों में सवर्ण दबदबे को लेकर शायद विशेष चिंता की गयी हो। ऐसा न होने का प्रधान कारण यही है कि ऐसे अध्ययन सामान्यतया सवर्णों के ही नेतृत्व में हुए हैं, इसलिए उन्होंने इच्छाकृत रूप से इसे छिपाने का प्रयास किया। बहरहाल आज जबकि कल के रोहित वेमुलाओं को बचाने की लड़ाई सात समंदर पार तक पहुंच गयी है, तमाम छात्र और मानवाधिकार संगठनों को चाहिए कि वे संयुक्त राष्ट्र संघ का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट करें।

सवर्ण वर्चस्व : शिक्षा जगत के लिए घातक क्यों!

दुनिया को नहीं मालूम कि भारत में जिन लोगों का शिक्षण संस्थाओं में दबदबा है, वे इस धरा पर विद्यमान एकमात्र ऐसी शासक जमात हैं, जो सदियों से ही देश की बहुसंख्य आबादी को अशिक्षित रखने में सर्वशक्ति लगाते रहे हैं। ऐसा इसलिए कि देश की विशालतम संख्यक आबादी का शिक्षा-ग्रहण इनकी नजरों में अधर्म रहा है। धर्म-शास्त्रों में अपार आस्था के कारण वे शुद्रातिशूद्रों और महिलाओं को खुद हिन्दू-ईश्वर द्वारा शिक्षालयों से बहिष्कृत जमात के रूप में देखने के अभ्यस्त रहे। इतिहास साक्षी है धर्म-शास्त्रों द्वारा निर्मित इस सोच के कारण वे हजारों साल से हर काल में बहुजनों और महिलाओं की शिक्षा के मार्ग में एवरेस्ट बनकर खड़े होते रहे हैं। आज भी उनकी उस सोच में रत्ती भर भी परिवर्तन नहीं आया है। इसलिए 21वीं सदी में भी, अधिकांश में ही द्रोणाचार्य क्रियाशील है, रोहित वेमुला के कारुणिक अंत के बाद यह सत्य नए सिरे से उभर कर सामने आया है। इन्हीं द्रोणाचार्यों के विरुद्ध आज विक्षोभ की लहरें उठी हैं।

सवर्ण दबदबे का सर्वाधिक शिकार : दलित छात्र

बहरहाल हिन्दू धर्म-शास्त्रों में गहरी आस्था कारण के अपवाद रूप से कुछेक को छोड़कर अधिकांश सवर्ण गुरुजनों की नजरों में दलित, आदिवासी और ओबीसी छात्रों की हैसियत शिक्षालयों में घुसपैठियों जैसी रही है। इसलिए वे अपने दबदबे का इस्तेमाल इन घुसपैठियों की एडमिशन की राह कठिन करने से लेकर उनकी स्कालरशिप में तरह-तरह की अड़चने लगाने, रिसर्च के लिए सुपरवाईजर सुलभ न कराने, रिटेन में बेहतर अंक लाने के बावजूद इंटरव्यू में न्यूनतम अंक देने और तरह-तरह से प्रताड़ित करने में करते रहे रहे हैं। लेकिन इनके दबदबे का सर्वाधिक शिकार अस्पृश्य जातियों के छात्र-छात्रा होते रहे हैं। चूंकि अस्पृश्यों की सत्ता हिन्दू धर्म-शास्त्रों द्वारा मनुष्य रूप में अस्वीकृत है, इसलिए इन मानवेतरों के लिए देवालयों की भांति शिक्षालयों

Continue Your Reading Journey

This preview has ended. Access the complete library and support our mission.

Join Our Inclusive Reading Community

✓ We champion diverse voices and perspectives
✓ Your support helps amplify underrepresented authors
✓ We provide free access to educational institutions
✓ Building bridges through shared stories
✓ Creating space for all narratives to be heard

Support Our Mission

Your donation enables us to:
• Curate diverse book collections
• Support authors from marginalized communities
• Provide free resources to educators
• Maintain our accessible digital library

Visit: www.diversitymission.in

Sign the diversity pledge • Make a donation • Download full library